वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

January - 2026

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्‌श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

अपने ज्ञानको ठीक कर !!

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

'ज्ञानकी चमक चारों ओर फैल रही है।' अतः हमें तो सदा सर्वदा सर्वथा ज्ञानमयपना ही दिखाई देता है। इसके सिवा हमें तो कुछ भी नहीं दिखता। *'ज्ञानकी चमक बिना सोनेकी चमक काहेमें ज्ञात होगी?'* तूने कहा कि सोना चमकता है,तो हम पूछते हैं कि सोना चमक रहा है ऐसा पता कहाँसे चला तुझे? किसकी मौजूदगीमें तूने नक्की किया कि सोना चमक रहा है? ज्ञानकी मौजूदगी बिना कुछ भी निश्चित नहीं होता। अब कहिये पहले सोना या पहले ज्ञान? यह प्रश्न है। जगतमें, संसारमें सोनेको मूल्यवान माना गया है–। अर्थात् जो पदार्थ जाननेमें केवल आता है उसे ज्यादा मूल्य दे रखा है और जाननेवालेकी कीमत खो दी है और इसप्रकार पूरा संसार चल रहा है। यह सर्वज्ञ अनुसारिणी वाणीमें – एक–दो पंक्तिमें सारे संसारका स्वरूप आ जाता है। जो जाननेमें आये उसे कीमत दे देता है और जाननेवालेकी बिलकुल कीमत नहीं करता है या इसे निर्मूल्य मानकर चलता है। मानो इसकी कोई कीमत ही नहीं हो।

एक आँखका परदा हो या ऐसा कोई महत्वपूर्ण अवयव जिसे retina कहे तोउस महत्वपूर्ण शरीरका अवयव खराब हो तो इसे ठीक करने इंग्लैंड, अमरिका जहाँ भी होता हो या 'मद्रास'के पासमें 'वेल्लूर' है, जहाँ भी दुनियाके किसी भी कोनेमें होता हो इसका पता लगाकर जरूर जायेगा। जबकि बात तो एक छोटेसे शरीरके अवयवको ठीक करनेकी होती है। इतनी कीमत जीवको शरीरके अवयव की है। परन्तु भीतरमें जो जाननेवाला तत्त्व है (इसकी कीमत नहीं कर रहा है जीव)। अरे! आँखका परदा तेरा यूँ धराका धरा रह जायेगा, जाननेवाला तत्त्व यदि चला गया तो परदा ज्योंका त्यों रह जायेगा और कुछ नहीं दिखेगा। परदे पर कोई चीज़ जाननेमें नहीं आयेगी। परन्तु (ज्ञानको) ठीक करनेका जीव उपाय नहीं कर रहा है।

मुमुक्षु :– ज्ञानको ठीक करनेके लिये कुछ नहीं!

पूज्य भाईश्री :– ज्ञानको सम्यक् करने हेतु, ज्ञानको ठीक करने हेतु, ज्ञानको समीचीन करनेके लिए जीवका कोई उद्यम नहीं दिखता है। जबकि एक छोटेसे छोटा शरीरका अंग भी ठीक करना हो तो भले ही हज़ारों रुपयेका खर्च हो जाये या कितनी ही प्रतिकूलताओंको भोगना पड़े परन्तु वहाँ पहुँचना है। इसे तो ठीक करना होगा। नहीं तो यह तो बहुत कीमती वस्तु है, आँख चली जाएगी। आँख चली जाएगी, आँख चली जायेगी इसकी चिंता होती है, ज्ञान चला जायेगा इसकी चिंता नहीं होती !! यह तकलीफ़ है।

ज्ञान चला जायेगा यानी कि ज्ञानको आवरण आ जायेगा। जो–जो दोष करते हुए ज्ञान आवरित हो जायेगा इसकी तो परवा नहीं करता और एक आँखका ऑपरेशन करना हो तो गंभीर होकर काफ़ी गहराई तक गंभीरतामें आकर उस प्रश्नको हल करनेके लिए उसे हाथमें लेता है। ऐसी गड़बड़ी चल रही है।

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १५ पर..)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्–२५५२, अंक–३३७, वर्ष–२८, जनवरी–२०२६

कहानरत्न किरणें!!

– अध्यात्म युगसृष्टा
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
('परमागमसार'में से साभार उद्धृत)

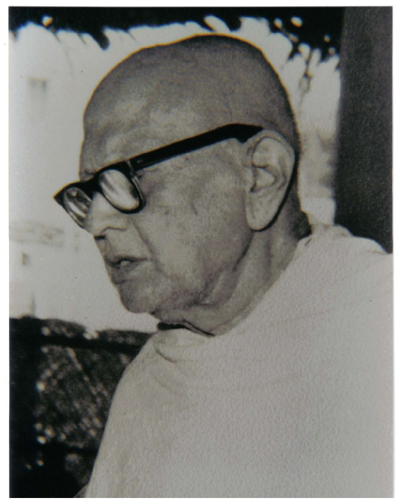

डॉ.गांगुली :– व्रत–तप–त्याग करनेसे आत्माके ऊपरका छालरूपी मैल निकल जाता है न?

पू. गुरुदेवश्री :– नहीं, यह तो राग है। इन व्रत–तप आदिके रागको अपना मानना – यह तो मिथ्यात्व है – अपराध है – भ्रमणा है ।

डॉ. गांगुली :– तो साधारण जीवोंको तो ये व्रतादि करना ठीक है न?

पू.गुरुदेवश्री :– नहीं, साधारण जीवोंको भी इन व्रतादिसे धर्म नहीं, इनसे जन्म–मरणका अन्त आने वाला नहीं, इनमें लाभ–बुद्धिसे तो जन्म–मरण बढ़ते हैं। २६१

*

डॉ. गांगुली :– आत्मज्ञान होने पर तो ये व्रतादि राग हैं – ऐसा भासित होता है, परन्तु आरंभमें आत्मज्ञान तो शीघ्र ही नहीं होता न?

पू. गुरुदेवश्री :– शीघ्रका अर्थ – इसका अभ्यास करना चाहिए। राग क्या है, आत्मा क्या है, मैं त्रिकाल टिकनेवाली वस्तु कैसी हूँ (आदिका) अभ्यास कर – ज्ञानकर, रागसे भिन्न आत्माका अनुभव करना – यह पहली बात है। आत्माको जाने बिना इसके सभी क्रिया–कांड अरण्य–रोदनसमान हैं। अन्तरमें आत्मा आनन्द–स्वरूप भगवान चैतन्य–तेजका पुँज प्रभु है। उसका ज्ञान न हो, अन्तर दशाका वेदन न हो, तब तक अज्ञानीके सभी क्रिया–कांड झूठे हैं। सम्यक्दर्शन प्राप्त करना दुर्लभ है, सर्वप्रथम सम्यक्दर्शन प्राप्त करनेका ही प्रयत्न होना चाहिए। २६२

*

प्रश्न :– आत्मा परमें तो कोई हेर–फेर नहीं कर सकता – यह तो ठीक है पर क्या स्वयंकी पर्यायोंमें भी हेर–फेर करना उसके अधीन नहीं?

उत्तर :– अरे भाई! जहाँ द्रव्यका निर्णय किया वह वर्तमान पर्याय स्वयं ही द्रव्यमें समाहित हो गई

तो फिर तुझे किसे बदलना है? जब पर्याय द्रव्यमें अंतर्मुख हो गई तब यह पर्याय क्रमशःनिर्मलरूप ही परिणत होती रहती है और शान्ति बढ़ती जाती है। इस प्रकार पर्याय ही जब द्रव्यमें अन्तर्मग्न हो गई तब उसे बदलनेकी बात कैसी? वह पर्याय स्वयं ही द्रव्यके आधीन आ गई है।

पर्याय आएगी ही कहाँसे? –द्रव्यमेंसे – अतः जब सम्पूर्ण द्रव्यको ही वशमें कर लिया है, (श्रद्धा–ज्ञानमें स्वीकार कर लिया) तब पर्याय वशमें आ ही गई; तात्पर्य यह है कि द्रव्यके आश्रयसे पर्याय सम्यक् और निर्मल रूपसे ही परिणमित होने लगी। जब स्वभाव निर्णित हुआ तब ही मिथ्याज्ञानका नाश होकर सम्यक्ज्ञान हुआ, मिथ्याश्रद्धा पलट कर सम्यक्दर्शन हुआ। इस प्रकार पर्याय निर्मल होने लगी– यह भी वस्तुका धर्म है। वस्तुस्वभाव बदला नहीं और पर्यायोंकी क्रम–धारा टूटी नहीं। द्रव्यके ऐसे–ऐसे स्वभावकी स्वीकृतिमें ही पर्यायकी निर्मल धाराका जन्म हुआ और ज्ञानादिरूप अनन्त पुरुषार्थ उसीमें समाविष्ट है।

स्व या पर – जब किसी द्रव्य, किसी गुण व किसी पर्यायमें हेर–फेर करनेकी बुद्धि न रही तब ज्ञान–ज्ञानमें ही जम गया, अर्थात् मात्र वीतरागी ज्ञाता–भाव ही रह गया – ऐसे साधकको अल्पकालमें मुक्ति होगी ही। बस! ज्ञानमें ज्ञाता–दृष्टारूप रहना – यही स्वरूप है – यही सबका सार है। यह अन्तर रहस्य जिसके ख़यालमें न आए उसे कहीं न कहीं, परमें अथवा पर्यायमें – हेर–फेर करनेकी बुद्धि बनी रहती है। ज्ञाता–भावसे च्युत होकर कहीं भी हेर–फेर करनेकी बुद्धि मिथ्याबुद्धि है। २६३

*

प्रश्न :– 'मैं जानने वाला ही हूँ' यह भाव जोर नहीं पकड़ता, यह कैसे जोर पकड़े?

उत्तर :– तूँ स्वयं जोर नहीं लगाता इसीलिए जोर नहीं पकड़ता। बाहरके संसारप्रसंगोंमें कितना चाव और उत्साह होता है, ऐसे ही अपने अन्तर स्वभावका चाव और उत्साह होना चाहिए। २६४

*

भाई! तेरा रूप तो भगवान स्वरूप है न! परमात्म स्वरूप तूँ है। जिनस्वरूप ही आत्मा है – वीतराग–अकषाय मूर्ति ही आत्मा है – उसे परम–पारिणामिक भाव कहो चाहे एक रूप भाव कहो, यहाँ उसे शुद्ध भाव कहनेमें आता है। उससे जीवादि सात बाह्य तत्त्व भिन्न हैं। निमित्त आदि तो भिन्न हैं ही, पर रागादि अशुद्ध भाव भी बहिर्तत्त्व हैं और पूर्ण स्वरूपके आश्रयसे उत्पन्न होनेवाली वीतरागी पर्याय भी पर्याय होनेसे बहिर्तत्त्व है और जो बहिर्तत्त्व हैं, वे हेय हैं। २६५

*

कारणपरमात्मा – यही वास्तवमें आत्मा है। निर्णय करती है पर्याय, नित्यका निर्णय करती है अनित्य पर्याय, पर उसका विषय है कारण परमात्मा, जिससे वही वास्तवमें आत्मा है। पर्यायको अभूतार्थ बतलाकर – व्यवहार कह कर – अनात्मा कहा है। २६६

*

अलिंगग्रहणके २० वें बोलमें कहा है कि जो ध्रुवका स्पर्श नहीं करती ऐसी शुद्ध पर्याय ही आत्मा है, वह वेदनकी अपेक्षा ऐसा कहा है, क्योंकि आनन्दका वेदन परिणतिमें है। त्रिकालीका वेदन नहीं होता, इसकारण ऐसा कहते हैं कि जो वेदनमें आया वह मैं हूँ। जहाँ जो आशय हो वहाँ

वैसा ही समझना चाहिए। यहाँ सम्यग्दर्शनकी बात है। सम्यग्दर्शनका विषय जो त्रिकाली-ध्रुव सामान्य है, एक वही सर्व तत्त्वोंका सार है। वह वस्तु स्वयं ध्रुव है, उस पर दृष्टि जाने पर ही सम्यग्दर्शन होता है। २६७

*

शुद्धज्ञान त्रिकाली द्रव्यका ही अवतार है। अवतारका अर्थ ऐसा नहीं कि नवीन उत्पत्ति हो परन्तु द्रव्य शुद्ध ज्ञानस्वरूप है – विकल्पसे व रागसे रहित ही है। शुद्ध ज्ञानस्वरूप गुण-गुणीके भेदसे भी रहित है तथा सुख-सागरका पूर है – वस्तु स्वयं ही सुखसागरका पूर है – वस्तुमें सुखसागरकी बाढ निहित है। अतीन्द्रिय आनन्दका पुँज प्रभु ही शुद्धभाव है, सामान्यभाव है, ज्ञायक भाव है – उसके एक समय मात्रके अनुभवसे समस्त संसारका नाश हो जाता है। २६८

*

मैं अभेद हुँ। ''निर्विकल्प अहम्'' ऐसा एक पाठ है। मुझमें विकल्प – भेद नहीं है – यह तो नास्तिका कथन है, अतः ऐसा न लेकर यूँ कहा कि मैं निर्विकल्प हूँ, मैं उदासीन हूँ। आहाहा! ऐसी वस्तु समझनेके लिए सभी आग्रह छोडने चाहिए। ''हम जानते हैं'' ऐसा भी अभिमान छोडना होगा। मैं उदासीन हूँ – मेरी बैठक तो ध्रुवमें है – मेरा आसन ध्रुव है – मैं परसे तो उदास हूँ ही- पर्यायसे भी उदास हूँ। २६९

*

तीन काल और तीन लोकमें शुद्ध निश्यनयसे ज्ञान-रस और आनन्द-कन्द प्रभु केवल मैं हूँ। 'ऐसा हूँ' – ऐसी दृष्टि ही आत्म-भावना है। मैं ऐसा हूँ तथा सभी जीव भी भगवत्स्वरूप हैं, परमात्मस्वरूप सभी जीव हैं, – वस्तुदृष्टिसे सभी जीव ऐसे हैं – ऐसे आत्माका अनुभव होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान है और उसमें स्थिर होना चारित्र है। इस प्रकार मन-वचन-कायासे व कृत-कारित-अनुमोदनासे निरंतर यानी कि अन्तर डाले बिना – यह भावना भाना कर्तव्य है 'कि समस्त जीव ऐसे (परमात्मस्वरूप) ही हैं' इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी करने योग्य माने तो वह आत्माका अनादार है। २७०

*

सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेवने जिस आत्माको ध्रुव कहा है, उसका जो जीव अवलंबन ले उसे ध्रुव स्वभावमें से शुद्धता प्रकट होती है। उसको आत्मा शुद्धरूपसे उल्लसित हुई – ऐसा कहनेमें आता है। जैसे अनादि अज्ञान-वश, ''पुण्य-पाप भावरूप मैं हूँ'' – ऐसे मिथ्यात्वका अनुभव वह दुःखका अनुभव है, वैसे ही ज्ञानीको अतीन्द्रिय आनन्द अमृतका भोजन है। २७१

*

प्रश्न :– ज्ञानीकी प्ररुपणामें असत्‌की प्ररुपणा होती है?

उत्तर :– नहीं, ज्ञानीकी वाणीमें असत्‌की प्ररुपणा नहीं होती। ज्ञानीको अस्थिरता होती है, पर प्ररुपणामें अस्त् कथन नहीं आता। 'व्यवहारसे निश्चय प्राप्त होता है, रागसे लाभ होता है अथवा रागसे धर्म होता है, एक द्रव्य अन्य द्रव्यका कार्य करता है' – ऐसी प्ररुपणाको असत् प्ररुपणा कहते हैं। २७२

*

प्रश्न :– ''प्रवचनसार''में शुद्धनयसे विकारको जीवका कहनेका क्या प्रयोजन है?

उत्तर :– विकार तो जीवके स्वयंके द्वारा ही हुआ है। वह स्वयंका अपराधरूपी कार्य है। पर कर्मसे (पुद्‌गलसे) विकार नहीं हुआ यह बतलानेके लिए ही विकारको शुद्धनयसे (अशुद्ध निश्चयनयसे) जीवका कहा है। २७३

*

दो नय परस्पर विरोधी हैं। जो वे एकरूप हों तो नय दो नहीं रह जाते। व्यवहारनय नहीं है – ऐसा नहीं। पर व्यवहारसे लाभ हो तो निश्चयनय नहीं रहता। पानी गरम होता है, उसमें अग्नि निमित्त नहीं – ऐसा नहीं है, परन्तु निमित्तसे उपादानमें कार्य हो तो उपादान नहीं रहता। निश्चयके साथ व्यवहार नहीं होता – ऐसा नहीं है, परन्तु व्यवहारसे निश्चय हो तो निश्चय नहीं रहता। उपादानके कार्यकालमें निमित्त होता है, परन्तु निमित्तसे उपादानमें कार्य नहीं होता – ऐसी वस्तुकी स्थिति है। २७४

*

प्रश्न :– आप ध्रुवस्वभावमें उपयोग ले जानेको बारंबार कहते हैं, पर ध्रुव स्वभाव देखा हो तो उपायोग ले जाए न?

उत्तर :– ध्रुवस्वभावकी ओर लक्ष्य करे तब पर्यायमें ध्रुवस्वभाव दिखे न! लक्ष्य किए बिना कैसे दिखे, जो ध्रुवस्वभावकी ओर लक्ष्य न करे तो उसे कैसे दिखाई दे? अन्तरमें यथार्थ लक्ष्य करे तो उसे ध्रुवस्वभाव दर्शित होगा ही। पर्यायके पीछे द्रव्यस्वभाव विद्यमान है – वहाँ दृष्टि करे तो ध्रुव स्वभाव दर्शित होता ही है। २७५

*

प्रश्न :– अभेदस्वरूप आत्माकी अनुभूति होनेके बाद व्रतादि करनेसे क्या लाभ है?

उत्तर :– शुद्धात्माका अनुभव होनेके पश्चात् पाँचवें और छठ्ठे गुणस्थानमें उस–उस प्रकारके शुभराग आए बिना नहीं रहते। वे शुभराग बन्धके कारण हैं और हेय हैं – ज्ञानी ऐसा जानते हैं। शुद्धताकी वृद्धि–अनुसार कषाय घटते जानेसे व्रतादिसे शुभराग आए बिना रहते ही नहीं – ऐसा ही स्वभाव है। २७६

*

प्रश्न :– परके लक्ष्यसे आत्मामें जाना नहीं होता, पर शास्त्र पढ़नेसे तो आत्मामें जाना होता है न?

उत्तर :– शास्त्र पढ़नेसे विकल्पसे भी आत्मामें नहीं जा सकते।

प्रश्न :– तो शास्त्र नहीं पढ़े न?

उत्तर :– आत्मलक्ष्यसे शास्त्रका अभ्यास करना – ऐसा 'प्रवचनसार'में कहा है और 'समयसार'की पहली गाथामें आचार्यदेवने कहा है कि 'तेरी पर्यायमें सिद्धोंकी स्थापना करके पढ़'। इसका अर्थ यह है कि तूँ सिद्ध स्वरूप है – ऐसी श्रद्धाप्रतीति करके पढ़। जिसने सिद्ध स्वरूपमें दृष्टि जमाई है, उसको सुनते और पढ़ते हुए भी निजस्वरूपमें एकाग्रताकी वृद्धि होगी। २७७

*

ऊपर–ऊपरसे पढ़ना–सुनना आदि सब करे तो उससे क्या? इसे स्वयं अन्तरसे 'हाँ' आनी चाहिए कि 'राग मैं नहीं हूँ और ज्ञायक स्वरूप ध्रुव वस्तु ही मैं हूँ' – ऐसे इसके अस्तित्वकी अन्तरसे 'हाँ' आए। 'हाँ' अर्थात् स्वभाव की प्रतीति होकर 'हाँ' आए, तब उसके कल्याणका आरंभ होता है। २७८

*

प्रश्न :- द्रव्यलिंगीको शुभमें रुचि है या अशुभमें भी है?

उत्तर :- द्रव्यलिंगीको शुभमें रुचि है। २७९

*

प्रश्न :- काया और कषायमें एकत्व है - क्या द्रव्यलिंगीको इसका ख़याल आता है?

उत्तर :- उसे खयाल नहीं आता।

प्रश्न :- तो उसे धारणाज्ञान भी सही नहीं हुआ?

उत्तर :- तत्त्वकी जानकारीका धारणाज्ञान तो उसे सही है, पर स्वयं कहाँ अटका है - यह उसके ज्ञानमें नहीं आता, वह (अपनी) कषायकी अतीव मन्दताको स्वानुभव मानता है। २८०

*

प्रश्न :- बन्धका कारण परद्रव्य और मोक्षका कारण स्वद्रव्य है न?

उत्तर :- बन्धका कारण परद्रव्य नहीं है। परद्रव्य तो सदा ही विद्यमान रहता है, यदि वह बन्धका कारण हो तो कभी भी बन्ध रहित नहीं हो सकते। परद्रव्य-प्रतिके स्वामित्वभाव ही बन्धका कारण है। स्वद्रव्यका अस्तित्व अनादिसे होने पर भी मोक्ष नहीं हुआ, इससे सिद्ध हुआ कि स्वद्रव्यमें स्वामित्वभाव ही मोक्षका कारण है। स्वद्रव्यमें स्वामित्व-भाव होने पर परद्रव्यके विद्यमान होते हुए भी बन्ध नहीं होता। अतः स्वद्रव्यमें स्वामित्व भाव मोक्षका कारण है, और परद्रव्य के प्रति स्वामित्वभाव बन्धका कारण है। २८१

*

'कालनयकी अपेक्षा जिनकी सिद्धि समय पर आधारित है' अर्थात् सम्यग्दर्शन-सम्यग्चारित्र-केवलज्ञान आदि जिस प्रकार जिस समय प्रकट होने वाले हैं, उसी समय प्रकट होते हैं। जिस समय जो होना है, उसी समय वह होता है। परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि पुरुषार्थ बिना हो जाता है। कालनयसे ज्ञान करने वाले साधककी दृष्टि काल ऊपर नहीं, वरन् स्वभाव पर होती है। अतः वे कालनयसे, जानते हैं कि जिस समय चारित्र प्रकट होना है - उसी समय प्रकट होगा, जिस काल केवलज्ञान होना है-उसी समय प्रकट होगा। किसी मुनिको लाखों वर्षों तक चारित्र पालन करने पर भी केवलज्ञान प्रकट होनेमें समय लगता है, किसी मुनिको अल्प कालमें ही केवलज्ञान हो जाता है। अतः दीर्धकाल तक चारित्र-पालन करने वाले मुनिको अधीरता नहीं होती, क्योंकि वे जानते हैं कि केवलज्ञान होगा ही , सो अपने स्वकालमें ही प्रकट होगा। २८२

*

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (जनवरी-२०२६, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंकको समर्पणराशि

श्री कीर्तिभाई छोटालाल देसाई, अमरिका

की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।

अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

लौकिकभावकी भयंकरता !!

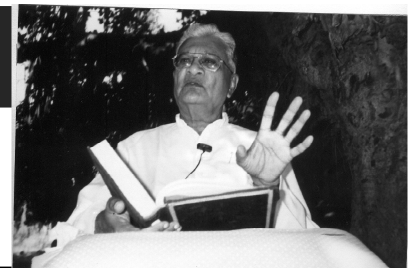

श्रीमद् राजचंद्र, पत्रांक–५२८ पर प्रवचन

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

पत्रांक–५२८

बंबई, आसोज सुदी ११, बुध, १९५०

जिन्हें स्वप्नमें भी संसारसुखकी इच्छा नहीं रही, और जिन्हें संसारका स्वरूप सम्पूर्ण निःसारभूत भासित हुआ है, ऐसे ज्ञानीपुरुष भी आत्मावस्थाको वारंवार सम्भाल सम्भालकर उदय प्राप्त प्रारब्धका वेदन करते हैं, परंतु आत्मावस्थामें प्रमाद नहीं होने देते। प्रमादके अवकाश योगमें ज्ञानीको भी जिस संसारसे अंशतः व्यामोह होनेका संभव कहा है, उस संसारमें साधारण जीव रहकर, उसका व्यवसाय लौकिकभावसे करके आत्महितकी इच्छा करे, यह न होने जैसा ही कार्य है; क्योंकि लौकिकभावके कारण जहाँ आत्माको निवृत्ति नहीं होती, वहाँ अन्य प्रकारसे हितविचारणा होना संभव नहीं है। यदि एककी निवृत्ति हो तो दूसरेका परिणाम होना संभव है। अहितहेतु ऐसे संसारसम्बन्धी प्रसंग, लौकिकभाव, लोकचेष्टा इन सबकी सम्भाल यथासंभव छोड़ करके, उसे कम करके आत्महितको अवकाश देना योग्य है।

आत्महितके लिये सत्संग जैसा बलवान अन्य कोई निमित्त प्रतीत नहीं होता, फिर भी वह सत्संग भी जो जीव लौकिकभावसे अवकाश नहीं लेता, उसके लिये प्रायः निष्फल होता है, और सत्संग कुछ सफल हुआ हो, तो भी यदि लोकावेश विशेष–विशेष रहता हो तो उस फलके निर्मूल हो जानेमें देर नहीं लगती, और स्त्री, पुत्र, आरंभ तथा परिग्रहके प्रसंगमेंसे यदि निजबुद्धि छोड़नेका प्रयास न किया जाये तो सत्संगके सफल होनेका संभव कैसे हो? जिस प्रसंगमें महा ज्ञानीपुरुष सँभल सँभलकर चलते हैं, उसमें इस जीवको तो अत्यंत अत्यंत सावधानतासे, संकोचपूर्वक चलना चाहिये, यह बात भूलने जैसी ही नहीं है, ऐसा निश्चय करके प्रसंग–प्रसंगमें, कार्य–कार्यमें और परिणाम–परिणाममें उसका ध्यान रखकर उससे छूटा जाये, वैसे ही करते रहना, यह हमने श्री वर्धमानस्वामीकी छद्मस्थ मुनिचर्याके दृष्टांतसे कहा था।

श्रीमद्र राजचंद्र वचनामृत पत्रांक–५२८, पन्ना–४३०। कृपालुदेव शुरूमें ज्ञानीपुरुषकी बात करते हैं। *'जिन्हें स्वप्नमें भी संसारसुखकी इच्छा नहीं रही, और जिन्हें संसारका स्वरूप संपूर्ण निःसारभूत भासित हुआ है, ऐसे ज्ञानीपुरुष भी आत्मावस्थाको वारंवार सम्भाल सम्भालकर उदय प्राप्त प्रारब्धका वेदन करते हैं, परन्तु आत्मावस्थामें प्रमाद नहीं होने देते।'* क्या कहते हैं? ज्ञानीपुरुषका परिणमन कैसा होता है? कि, संसारमें सुख है ऐसी इच्छा जिन्हें जागृत अवस्थामें तो क्या स्वप्नमें भी नहीं होती।

देखो! ज्ञानीकी बात करते हैं। संसारमें तो लौकिक सुखके बहुत प्रकार हैं। फिर भी, ज्ञानीको कहीं भी सुख भासित नहीं होता माने लगता नहीं और इसकी इच्छा होती नहीं। अब अपना (परिणमन) देखो तो (हमें) कितनी छोटी–छोटी

बातोंमें अच्छापन लगता है। (दृष्टांतरूपसे) खिचड़ी अच्छी बनके आयी तो अच्छापन लग गया। अच्छापन लगता है इसका कारण सुखबुद्धि है। इसके पीछे सुखबुद्धिका, भोक्तापनेका अभिप्राय है। प्रयोजनसे ऐसे संबंध जोड़ना, वर्तमान प्रयोजनसे संबंध जोड़ना।

ज्ञानी कि, जिन्हें स्वप्नमें भी संसारसुखकी इच्छा नहीं रही। अतः अज्ञानतामें जो सुखकी कल्पना होती है वह नष्ट हो चुकी है। जगतके समस्त प्रकारकी पर्यायोंको धारण किये हुए पुद्गल परमाणु सुखसे शून्य हैं। वे सभी जड़ परमाणु हैं। पुद्गल अर्थात् जड़ परमाणु हैं। वे किसी भी पर्यायरूप परिणमन कर रहे हो, फिर भी सुखसे शून्य हैं – सुखसे रहित हैं। उसमें इष्टपना-अनिष्टपना होता है, वह सुखबुद्धिके कारण होता है। उसमें अभिप्रायकी भूल है। उसमें सुखका अभिप्राय है। ऐसा अभिप्राय जिनका (ज्ञानीका) खतम हो चुका है, क्योंकि उनका ज्ञान इतना स्पष्ट है कि, सुख रहित पदार्थोंको सुख रहित देखते हैं। एक तरफ तो ऐसा है।

दूसरी ओर भीतरमेंसे सुखका प्रवाह चालू है। और अनंत सुखके धामका यानी कि स्वयंका अवलंबन लेते हैं। वह सुखका प्रवाह कब चलता है? कि, 'स्वयं अनंत सुखधाम है' इसका अवलंबन लेने पर सुखका प्रवाह चलता है। दूसरी ओर (अन्य पदार्थ सुखसे) बिलकुल खाली दिखता है। अंदरमें सुख भरा हुआ दिखता है और बाहरमें खाली दिखता है।

'...और जिन्हें संसारका स्वरूप संपूर्ण निःसारभूत भासित हुआ है,...' भासित हुआ है मतलब ऐसा लगा है। संसार निःसार अर्थात् तुच्छ लगा है। जगतमें लोगोंको अमुक वस्तु कामकी चीज़ है, ऐसा लगता है। कामकी लगती है तो यहाँ तक लगती है कि, (इस परसे कहावत हो गई कि), 'संघर्यो साप पण काममां आवे' (मरे हुए साँपको सँभालकर रखा जाये तो वह भी बाँधनेके काममें आयेगा)।' लोगोंने ऐसी कहावत बना ली। जिसकी बदौलत घरमें छोटी-से छोटी चीज़ बिलकुल निकम्मी पड़ी हो तो भी ऐसा कहेगा कि, 'भाई! संग्रह किये जाओ कभी न कभी काममें आयेगी! होगी जब तो काममें आयेगी'। अब (ऐसा लगनेके बजाय ज्ञानीको) संसारका स्वरूप संपूर्ण निःसारभूत यानी कि तुच्छ लगता है। इसमें फिर रुपया-पैसा भी आ जाता है, सब अनुकूलता भी आ जाती हैं। सब तुच्छ हैं, (ऐसा लगता है)। आत्माको कोई चीज़ काममें नहीं आती।

ये सब जो कल्पनाएँ हैं कि, ये काममें आयेगा, ये काममें आयेगा, इससे आत्माका मूल स्वरूप बहुत दूर है। क्योंकि वहाँ (मूल स्वरूपमें) तो (दूसरी कोई वस्तु) है ही नहीं। वहाँ तो दूसरी चीज़को (रहनेका) कोई अवकाश ही नहीं है, ऐसा अद्वैत स्वरूप है। अद्वैत माने जहाँ द्वैत नहीं – दोपना नहीं। स्वभावमें दूसरी चीज़ काममें आने-नहीं आनेकी कल्पनाका अवकाश ही नहीं है। स्वयं मूल स्वरूपसे ऐसा है। (ये सब कल्पनाओंसे मूल स्वरूप) बहुत दूर है।

श्रद्धा-ज्ञानमें जिन्हें इस स्वरूपकी पकड़ है, इसको लेकर बाकी सब तुच्छ भासित होता है। ऐसे ज्ञानीपुरुष भी उदय (प्रसंगमें) वारंवार आत्मावस्थाको सँभाल सँभालकर (चलते हैं)।

(सँभल सँभलकर) उदयका वेदन करते हैं यानी कि उदयमें चलते हैं – सावधान रहकर (चलते हैं)। क्या बात आयी? कि, स्वयं ज्ञानदशाको प्राप्त हुए हैं, फिर भी उन्हें परिणमनमें कितनी दरकार है! अगर ज्ञानीको इतनी दरकार है तो मुमुक्षुको कितनी रखनी चाहिए!! मुमुक्षुको इस तरह हिसाब लगाना चाहिये। भले ही बात ज्ञानदशाकी चलती है फिर भी मुमुक्षुको इस बातका कैसे अनुसंधान करना चाहिये? ये बात किसको कहते हैं? ये पत्र मुमुक्षुको लिखते हैं। पत्र तो मुमुक्षुको लिखते हैं न? ये चर्चा कोई ज्ञानीके साथ नहीं करते हैं। ज्ञानी भी इतनी दरकार रखकर चलते हैं ! उदयमें इतनी अत्याधिक दरकार रखकर अपनी आत्मावस्थाको सँभालते हैं।

'...आत्मावस्थामें...' यानी कि आत्माका अवलंबन लेनेवाली अवस्था वह आत्मावस्था है। आत्मावस्था माने आत्माके अवलंबनपूर्वक चल रही जो अवस्था, वह आत्मावस्था कही जाती है। उसमें *'...प्रमाद नहीं होने देते।'* यानी कि बिलकुल ढीला नहीं छोड़ते। ऐसी भीतरमें (स्वरूपकी) पकड़ है! स्वरूपकी अवलंबनकी ऐसी पकड़ है कि, उसमें प्रमाद होने नहीं देते। (बाहरमें) उदय आता है और उदय जितना बलवानरूपसे आता है उतनी भीतरमें बलवानरूपसे सावधानी आती है ! जितना बलवान उदय आता है उतनी बलवानरूपसे स्वरूपकी सावधानी आती है!

आप गाड़ी चलाते हो तब (चलाते–चलाते) मान लो भीड़वाला रास्ता आ गया। जब रास्ता बिलकुल खाली था तब आपने बहुत तेजीसे गाड़ी चलाई, बराबर? गाड़ी बहुत तेज़ीसे भगाई। परन्तु जैसे ही भीड़वाला रास्ता आया तो आपने क्या किया? सावधानी रखी या नहीं रखी? दूसरे गाड़ीको ब्रेक मारकर धीरी करने लगे। ये तो आप दूसरे विचार करते–करते भी दूसरा काम कर सकते हो! उस वक्त दूसरे विचार भी चलते हो ऐसा बनता है। ऐसा नहीं है कि, एक ही ओर ध्यान रहता हो। फिर भी, इतनी सावधानी आती है।

वैसे (ज्ञानीपुरुष) उदयके कार्य करते–करते भी आत्मावस्थाको सँभालते हैं और उसमें ढीलापन नहीं आने देते। कठिन उदय आये तो विशेष दरकार, विशेष बलवानरूपसे, विशेष सावधानीमें आते हैं। ये एक परिणमनकी कार्यपद्धति है।

हम जो चर्चा करते हैं इसमें मुमुक्षुके लिये भी परिणमन विषयक यह एक महत्त्वका मुद्दा है, ज्ञानीको तो है ही। लेकिन अगर मुमुक्षु यहाँ भूल करे तो उसे खुदके परिणाम पकड़में नहीं आयेंगे। अगर मुमुक्षुको अपने परिणमनकी दरकार नहीं होगी (तो) कैसे परिणाम हो गये, ये पकड़में नहीं आयेगा। क्योंकि मुमुक्षुको नुकसान तो उदयमें ही होता है। अत: यदि इसकी दरकार न रही, सावधानी न रही तो परिणाम कैसे चल गये, ये उसकी पकड़में नहीं आयेगा। अगर पकड़में आयेगा तो इसके बहुतसे पहलू समझमें आयेंगे। अगर दरकार होगी तो इसके अनेक पहलू स्पष्ट होंगे। कौन–कौनसे पहलू स्पष्ट होंगे? ये दरकारपूर्वक समझने जैसा विषय है। दरकार सहित समझने जैसा विषय है।

(आगे कहते हैं) *'...प्रमादके अवकाश योगमें...'* अर्थात् ज्ञानी भी अगर शिथिलता रखें तो, *'...ज्ञानीको भी जिस संसारमें अंशत: व्यामोह होनेका संभव कहा है, उस संसारमें साधारण जीव रहकर, उसका व्यवसाय लौकिकभावसे करके आत्महितकी इच्छा करे, यह न होने जैसा ही कार्य*

है;... 'कितनी सुंदर बात लिखी है! उन्होंने तो पत्र चाहे किसीको भी लिखा हो लेकिन (हमें भी) लागू पड़े ऐसी बात है। देखो! भगवानने तो ऐसा कहा है कि, ज्ञानी भी अगर प्रमाद करें – शिथिलतामें आये तो उन्हें भी अंशत: व्यामोह होता है – चारित्रमोह होता है। और अगर ज्यादा शिथिलता हुई तो दर्शनमोहमें आ जानेमें देर नहीं लगती! ऐसी संभावना है। सांसारिक कार्योंके उदय इस प्रकारके होते हैं।

२६ वें वर्षमें एक पत्रमें (पत्रांक-४५३) लिखते हैं कि, मुश्किलसे गोते खाते-खाते संसारसमुद्रको तिरते हैं। संसार तो तिरते हैं लेकिन कभी-कभी गोता खा जाते हैं। कुछएक उदय ऐसे आते हैं कि, धड़ पर सिरका रहना (कठिन हो जाये) ऐसे उदय भी आते हैं। उस वक्त स्वयं बहुत सँभलकर चलते हैं।

(५६९ पत्रमें ऐसा लिखते हैं कि), *'जनकादि उपाधिमें रहते हुए भी आत्मस्वभावमें रहते थे, ऐसे आलंबनके प्रति कभी भी बुद्धि नहीं जाती।'* उनका अवलंबन नहीं लेना है। तीर्थंकरके त्यागका अवलंबन लूँगा लेकिन जनक महाराजाका नहीं लूँगा, ऐसा कहते हैं। तीर्थंकरके पुरुषार्थका अवलंबन लूँगा। यद्यपि जनक महाराजा भी पुरुषार्थ करते थे तब विदेहीदशामें रहते थे। अब देखिये! जनकराजा रामचंद्रजीके ससुर थे, महाज्ञानी थे। ससुर, दामाद – दोनों ज्ञानी! बेटी भी ज्ञानी! यानी कि सीताजी भी ज्ञानी! वे भी ज्ञानी थे। (कृपालुदेवको) यह मालूम है कि, जनकराजा राज-काजमें भी सहजरूपसे ज्ञानदशामें रह सकते थे, उसका भी एक बड़ा कारण यह था कि, उनके गुरु विद्यमान थे। अष्टावक्रजी जो उनके गुरु थे – वे विद्यमान थे। अष्टावक्र (नाम), ये उनके शरीरके अनुरूप था। उनके शरीरके आठों अंग टेढ़े थे। कितने? आठों अंग टेढ़े थे। सामान्य आदमी इन्हें देखे तो हँसी आ जाये, इतना अधिक बेडौलरूपसे उनका चलना होता था। लेकिन वे (इतने) जबरदस्त ज्ञानी थे कि, जिनका अवलंबन जनक महाराजा भी लेते थे! हज़ारों साल पहले जो ज्ञानी हुए, उनके परिणमनको कृपालुदेव किस तरह पकड़ते होंगे!! किस तरह परिणामको पकड़ा है!! (जनकराजा) ज्ञानदशामें (थे फिर भी) गुरु चरणमें रहते थे। उनके शरणमें आ गये थे। फिर (संसार तिरनेमें) दिक्कत नहीं आती थी, ऐसा है। प्रत्यक्ष गुरु, गुरु उपदेशका अवलंबन और वह भी विनम्र होकर उनके शरणका स्वीकार किया था, ऐसा कहते हैं। खुदने उनका शरण स्वीकार किया था। 'मैं तो ज्ञानी हूँ' ऐसा नहीं था। उनके (गुरुके) शरणमें रहते थे। इसलिये सुखपूर्वक (संसार) तिर गये। वरना ये संसार तिरना कोई मामूली बात नहीं है।

यहाँ क्या कहते हैं? कि, ज्ञानीको भी जिस संसारसे – सांसारिक प्रसंगोंसे व्यामोह होनेका संभव रहा है, ऐसे इस संसारमें साधारण मुमुक्षुजीवको रहकर और लौकिकभावसे व्यवसायके कार्य करते-करते, साथ-साथ आत्माके हितकी इच्छा रखना, यह नहीं बनने जैसा ही कार्य है। यह नहीं बन सकता। कहनेका तात्पर्य क्या है? कि, एक बार तो उसे पूरे संसारको गौण करना ही होगा। जिसका जो होना हो सो हो, इस तरह एक बार तो लात मारनी होगी। 'मैं मेरा काम कर लूँ' (ऐसा उपाड़ आता है)। वरना ये संसारके व्यवसायकी सावधानी मुझे स्वरूपमें सावधान नहीं होने देगी। इस प्रकारसे स्पष्ट भासित हो और स्पष्ट

नुकसान दिखे तो (संसारके कार्योंका) तो जो होनेवाला होगा सो होगा, कुछ control में आनेवाला है नहीं। लेकिन मेरी ये सावधानी मुझे बड़ा नुकसान कर देगी। इस प्रकार एक बार तो लात मार देगा! और अपने निज कार्यमें सावधान हो जायेगा। वरना तो नहीं बन सके ऐसा ही ये कार्य है। (संसारके कार्योंमेंसे) निकल ही नहीं सकता।

'...क्योंकि लौकिकभावके कारण जहाँ आत्माको निवृत्ति नहीं होती, वहाँ अन्य प्रकारसे हितविचारणा होना संभव नहीं है' (लौकिकभावकी मुख्यतामें) आत्माके हितकी बात मुख्य नहीं हो सकती। लौकिकभावके कारण – उसकी मुख्यतामेंसे आत्मा निकलता नहीं है। आत्माको निवृत्ति नहीं होती माने क्या? कि, आत्मा उसमेंसे निकलता नहीं है। आत्महितकी अधिकता? या जिसमें अहित होता है ऐसे दूसरे परिणामकी, दूसरे कार्यकी, दूसरे प्रसंगकी या दूसरी वस्तुकी अधिकता? ऐसे तुलना करनी होगी। और ऐसे निश्चय पर आना होगा कि, जब तक आत्मकार्य – आत्महित और आत्मा सर्वाधिक नहीं हो तब तक आत्मकार्य होनेकी कोई परिस्थिति है ही नहीं। (किसी भी बातमें) वजन कहाँ जाता है? उस पर बहुत आधार है। कहनेका मतलब क्या है? कि, मुख्यता होना, वजन जाना, रस आना – ये सब एकार्थ हैं। इस पर बहुत आधार है।

कृपालुदेवने २५४ पत्र लिखकर मुमुक्षुओंको पदार्थ निर्णय तक पहुँचाया है। वह इसलिये कि, एक बार यदि पदार्थका स्वरूप (निजात्म स्वरूप) भासित हो गया तो इसकी अधिकता इतनी आती है कि, फिर वह अधिकता छूटती नहीं। वरना इसके पहले विपरीत दिशामें जो अधिकता चालू है उसे छोड़ना मुमुक्षुके लिये कठिन काम है; नहीं हो सके ऐसा नहीं है, किन्तु कठिन काम है। एक मात्र आत्मकल्याणकी तीव्र भावना हो और खुदका ध्येय स्पष्ट हो कि, मुझे इतना बड़ा लाभ होनेवाला है! एकदम स्पष्ट हो कि, इतना बड़ा लाभ होनेवाला है! तभी दूसरा सब गौण होगा। बिना पूर्णताके लक्ष संसारके कार्य करना, उसमेंसे निकलना, उस व्यामोहमेंसे छूटना – यह न बन सके ऐसी बात है।

'वहाँ अन्य प्रकारसे हितविचारणा होना संभव नहीं है।' यानी कि मुमुक्षु आत्महितकी मुख्यता कैसे कर सकता है? *'यदि एककी निवृत्ति हो...'* माने लौकिकभावकी निवृत्ति। *'...तो दूसरेका परिणाम होना संभव है।'* तो आत्महितकी विचारणा संभवित है। लौकिकभावकी निवृत्ति तभी हो सकती है, कि जब एक ही लक्ष्य हो, एक ही ध्येय हो और एकनिष्ठासे (आत्महितका) काम करने एक लयसे पीछे लगा हो। वरना दूसरी कल्पनाएँ बीचमें आये बिना रहेगी नहीं और जीव छूट सकेगा नहीं, जीव उन सबमेंसे छूट नहीं सकता।

'...यदि एककी निवृत्ति हो तो दूसरेका परिणाम होना संभव है। अहितहेतु ऐसे संसारसंबंधी प्रसंग,...' (अर्थात्) जो उदय आते हैं वे किस प्रकारके आते हैं? अहितहेतु आते हैं। चाहे अनुकूलता आये चाहे प्रतिकूलताका आये। यदि जीवको उसमें अपनत्व हुआ तो वह अहितहेतु (प्रसंग) है। वह अहितका कारण है। हेतु माने कारण।

(प्रवचनका शेष अंश अगले अंकमें...)

मुनिहृदयसे प्रवाहित आत्मस्वरूपका अमृत...

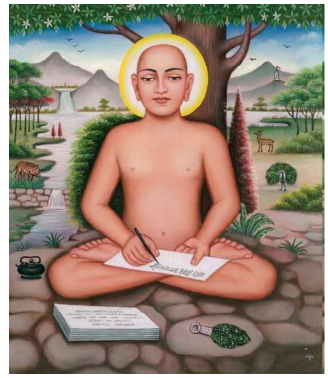

मैं सदा ज्ञाता हूँ, दृष्टा हूँ, पंच पद हूँ, त्रिभुवनका सार हूँ, ब्रह्मा हूँ, ईश हूँ, जगदीशस्वरूप हूँ। 'सोहम्' (ऐसा जो मैं) उसके परिचयसे ही मैं भवोदधिसे तर जाऊँगा। १५

(श्री दीपचन्द्रजी शाह, आत्मावलोकन, पृष्ठ–१६३)

*

यह आत्मा कर्मकृत रागादि अथवा शरीरादिसे संयुक्त न होने पर भी अज्ञानी जीवोंको संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है और वह प्रतिभास निश्चय ही संसारके बीजरूप है। १६

(श्री अमृतचन्द्राचार्य, पु.सि.उ., गाथा–१४)

*

यद्यपि शुद्धोपयोग लक्षणवाला क्षायोपशमिकज्ञान, मुक्तिका कारण होता है तो भी ध्यान करने–वालेको नित्य सकल निरावरण, अखण्ड, एक सम्पूर्ण, निर्मल केवलज्ञान जिसका लक्षण है, ऐसा परमात्मस्वरूप वह मैं हूँ, खण्ड ज्ञानरूप नहीं, ऐसी भावना करनी चाहिए।१७

(नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव, द्रव्यसंग्रह गाथा–३४)

*

योगियोंको अपने ध्यानके समय जो शुद्धात्मा दिखता है, वही परम ब्रह्मा है, वही जिन है, वही परमतत्त्व है,वही परम गुरु है,वही परमज्योति है, वही परमतप है,वही परमध्यान है, वही परमात्मा है, वही सर्व कल्याणरूप है, वही सुखका भाजन है, वही शुद्ध चिद्रूप है, वही परमशिव है, वही परमानन्द है, वही सुखदायक है, वही उत्कृष्ट चैतन्य है और वही सर्व गुणोंका भण्डार भी है। अर्थात् ध्यानमें अनुभवमें आता हुआ शुद्धात्मा, वही जीवका सर्वस्व है।१८ (परमानन्द स्तोत्र, श्लोक–१९)

*

सुगुरुकी महान छत्रछाया पाकर भी हे जीव! तूने सदा काल संतापको ही पाया। परमात्मा निजदेह मैं होने पर भी तूने पत्थर पर पानी डाला। १९

(श्री मुनिवर रामसिंह, पाहुड़ दोहा, गाथा–१३०)

*

जिस मुनिने इस अपवित्र शरीरसे अपने आत्माको भिन्न ज्ञायकस्वरूप जाना, उसने सर्व शास्त्रोंको जाना। २०

(श्री स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा–४६३)

*

(परमागम–चिन्तामणि में से साभार उद्धृत...)

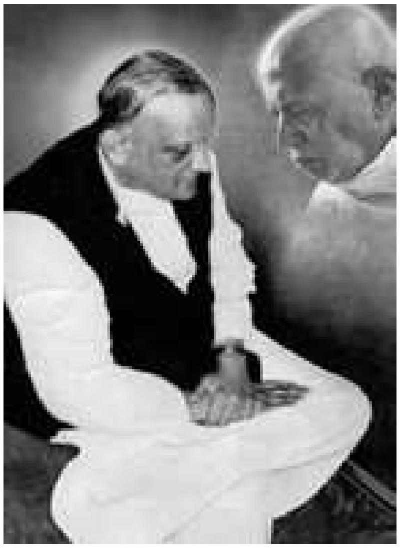

'मार्गदर्शन'

– 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' – पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी

पहले तो धारणा बराबर होनी चाहिए; लेकिन धारणा अन्तरमें उतरे तभी सम्यग्ज्ञान होता है। धारणामें भी लक्ष्य तो इधरका (आत्माका) **होना चाहिए। ५२१.**

*

उल्लासमें उल्लास आ जावे, वह योग्य नहीं। (राग होना वह उतना अपराध नहीं है जितना कि रागका राग होना। क्योंकि रागका राग अनन्तानुबन्धीका कषाय है।) **५२६.**

*

सुनना, पढ़ना, चर्चा करना – यह सभी ऊपर-ऊपरकी बातें हैं; असलमें तो अन्दरमें जम जाना चाहिए, स्वरूपमें ऊँड़े उतर जाना चाहिए। ५३०.

*

प्रश्न :- शुरुआतवालेको अनुभवका कैसे प्रयत्न करना?

उत्तर :- 'मैं परिणाम मात्र नहीं हूँ,' 'त्रिकाली ध्रुवपनेमें अपनापन स्थापना' – यही एक उपाय है। ५३२.

*

एक ही 'मास्टर की' (Master Key**) है; सब बातोंका सब शास्त्रोंका एक ही सार है – 'त्रिकालीस्वभावमें अपनापन जोड़ देना है'। ५३३.**

*

इसका (ध्रुव-दृष्टिका) **बल आए बिना,** (जीव) **दूसरी जगह अटकेगा ही। ५३५.**

*

सुननेमें भी एकान्त उल्लास नहीं होना चाहिए, दीनता लगनी चाहिए, खेद होना चाहिए। (मुमुक्षुकी भूमिकामें जिसको स्वरूप- प्राप्तिकी तीव्र लगन है उसे स्वरूपकी अप्राप्तिमें, सुनने आदिके भावमें असंतोष/खेद वर्तता है।) **५५१.**

*

'अपने' तो निर्वकल्पता भी करनी नहीं है; ध्रुवस्थलमें बैठनेसे निर्विकल्पता भी सहज होती है। पहले अभिप्राय ठीक करना चाहिए, फिर परिणाम भी ठीक होने लगते हैं। ५५९.

*

नित्य वस्तुका ही भरोसा ठीक करने योग्य है। ५६४.

*

'मैं त्रिकाली तत्त्व हूँ,' इसमें अहम्‌पना करना – वही बारह अंग – चौदह पूर्वका सार है; अंगपूर्वमें यही कहना है। ५७१.

*

प्रश्न :– अपरिणामीका अर्थ क्या? – आत्मा, पर्याय बिनाका सर्वथा कूटस्थ है?

उत्तर :– अपरिणामी अर्थात् द्रव्यमें पर्याय सर्वथा नहीं है, ऐसा नहीं है। लेकिन पलटनशील–परिणमनस्वभावी पर्यायको गौण करके, 'मैं वर्तमान में परिपूर्ण हूँ, अभेद हूँ' – ऐसे ध्रुवद्रव्य और ध्रुवपर्यायको (– जिसको कि, 'नियमसार'में कारण- शुद्धपर्याय कहा है, उसको) लक्ष्यगत् करने पर सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है।

द्रव्य पलटता नहीं है, पर्याय पलटती रहती है। यदि द्रव्य परिणमनको प्राप्त हो जाए तो पलटते हुए द्रव्यके आश्रयसे स्थिरता हो नहीं सकती; और स्थिरता बिना सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। इसलिए जो पलटती ही रहती है उसका लक्ष्य छोड़; और ध्रुव–अपरिणामी चैतन्यतत्त्व जो एक ही सारभूत है, उसका लक्ष्य कर!

पर्याय परिणमती है, उसका परिणमन होने दे! उसके सन्मुख मत देख! मगर उसी समय 'तु' परिपूर्ण–अपरिणामी–ध्रुवतत्त्व है, उसको देख!

अहो! 'मैं' वर्तमानमें ही परिपूर्ण–ध्रुव–अपरिणामी तत्त्व हूँ! – यह बात जगत्‌के जीवोंको नहीं जँचती है। और प्रमाणके लोभमें – आत्माको यदि अपरिणामी मानेंगे तो प्रमाणज्ञान नहीं होगा और एकांत हो जाएगा, ऐसी आड़ लगाकर – पर्यायका लक्ष्य नहीं छोड़ना चाहते हैं। इस ही कारणसे वे अपरिणामी चैतन्यतत्त्वको प्राप्त नहीं होते हैं। ५८०.

*

(पृष्ठ संख्या ०२से आगे...)

चक्रवर्तीने छः खंड छोड़े। 'शांतिनाथ', 'कुंथुनाथ', 'अरहनाथ', सब तीर्थंकर थे। 'भरत' चक्रवर्ती चौथे चक्रवर्ती प्रसिद्ध हैं। वे सब इस ज्ञानको ठीक करनेके लिये छः खंड छोड़ चले। जब उन्हें मूल्य भासित हुआ कि इस ज्ञानको ठीक करना चाहिए, दूसरा जो भी है उसका ठीक–अठीक इतना महत्त्वका नहीं है, ज्ञानको ठीक करना चाहिये तब वे छः खंडको छोड़नेके लिये उद्यमवंत हुए।

*

(प्रवचनांश..'बहिनश्रीके वचनामृत'–१९७, दि.०५–१०–८७, प्र.क्र.–१५१, 'अध्यात्म सुधा' भाग–६, पन्ना क्र.–५५–५६)

आत्मा – दिव्यमूर्ति देव !!

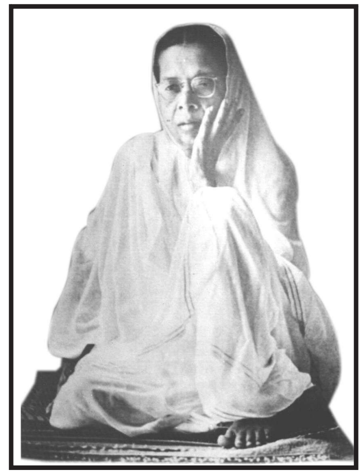

तत्त्वचर्चा मंगलवाणी–सीडी –१५ – B

– प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

मुमुक्षु :– ज्ञान द्वारा जो निर्णय करता है कि मैं पर का अकर्ता हूँ और श्रद्धा द्वारा निर्णय करे कि मैं पर का अकर्ता हूँ, इन दोनों निर्णय में क्या अन्तर समझना?

समाधान :– ज्ञानसे निर्णय किया या श्रद्धासे निर्णय किया, परन्तु वह श्रद्धा और ज्ञान दोनों यदि यथार्थ हो तो श्रद्धा सम्यक् हो तो ज्ञान भी सम्यक् है। ज्ञान सम्यक् हो तो श्रद्धा भी सम्यक् है। लेकिन यदि यथार्थ नहीं है तो श्रद्धा यथार्थ कब हो? विचारकरके ज्ञानसे नक्की करे कि मैं ज्ञायक हूँ, कर्ता नहीं हूँ, इसप्रकार ज्ञानसे नक्की करे तो श्रद्धा यथार्थ हो। और श्रद्धा यथार्थ हो तो उसके साथ श्रद्धा मुख्य रहकर ज्ञान भी उसके साथ ज्ञायकता का कार्य करता है। दोनों साथ में हैं–श्रद्धा और ज्ञान।

ज्ञाता हुआ तो फिर अमुक अस्थिरता रहती है। ज्ञायक हुआ इसलिये सब हो नहीं जाता। उसे ख्याल है। ज्ञायक हुआ, यथार्थ ज्ञायक हो उसे अस्थिरता हो तो उसे (ज्ञान है कि) मेरे पुरुषार्थ की मन्दतासे इतनी अस्थिरता है वह कब छूटे? मुझे कब वीतरागदशा हो? ऐसी भावना रहती है। उसे ऐसा नहीं रहता कि ज्ञायकता हुयी, मैं कुछ करता नहीं, ऐसा बोलने की रूखी बातें ज्ञायकता में नहीं होती। ज्ञायक हो तो यथार्थ अन्दरसे ज्ञायक ही हो जाता है।

ज्ञायक कब हो? तन्मयता कब छूटे? ज्ञायक हो तो। ज्ञायक हुए बिना तन्मयता छूटती नहीं। ज्ञायकता की अमुक प्रकार की अपनी परिणति अन्दरसे प्रगट होनी चाहिये। तो वह कर्तृत्व छूटे। वह नहीं हो तबतक विचारसे नक्की करे, निर्णय करे, ज्ञायक होने का, कर्ताबुद्धि तोड़ने का पुरुषार्थ करे। उसके पहले उसका–कर्तृत्व का रस छूट जाये ऐसा कर सकता है। बाकी यथार्थरूपसे तो जब ज्ञायक हो तब ही कर्तृत्व छूटता है।

मुमुक्षु :– जबतक अनुभव नहीं होता तबतक ज्ञान में जो निर्णय किया और श्रद्धा का आधार नहीं मिला है तबतक रुखापन ही समझना?

समाधान :– रुखापन तो जिसे ज्ञान में ऐसा हो कि मैं कुछ करता ही नहीं और पर्याय में भी कुछ नहीं है, ऐसी उसके ज्ञान में भूल हो तो रुखापन समझना। बाकी आत्मार्थी हो और विचारसे नक्की करता हो, लेकिन अभी ज्ञायकता प्रगट नहीं हुयी हो, आत्मार्थी हो और विचारसे नक्की करता हो तो

सबमें रुखापन ही हो ऐसा उसका अर्थ नहीं है। आत्मा के प्रयोजन अर्थ विचारता करता हो, नक्की करता हो तो सब को रुखापन ही हो ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :– उसका ऐसा अर्थ समझना कि रुचि में थोड़ा कार्य चलता है?

समाधान :– जिसे रुचि होती है उसे विचार आदि सब चलते ही रहते हैं, जिसे लगनी लगी हो उसे।

मुमुक्षु :– माताजी! दूसरा प्रश्न है, आत्मा अचिंत्य शक्तिओं का स्वामी स्वयमेव देव है, जिस क्षण जागृत हो उसही क्षण जागृत ज्योति अनुभव में आती है या बाहर आने के बाद आनन्द मालूम पड़ता है?

समाधान :– आत्मा, अचिंत्य शक्ति जो चिंतवन में नहीं आये ऐसा दिव्यमूर्ति देव है। ऐसी अनन्त शक्तिसे भरपूर आत्मा है। वह जिस क्षण जागे, अंतरसे विकल्प छूटकर अन्दरसे आत्मा प्रगट हो, उसकी स्वानुभूति हो उसही क्षण उसे वेदन में आता है, उसही क्षण उसे जानता है। बाहर आकर जाने ऐसा कुछ होता नहीं। ज्ञान कहाँ चला गया है? ज्ञान स्वयं मौजूद ही है। ज्ञान का ऐसा स्वभाव है कि ज्ञान स्वयं को जानता है, ज्ञान द्रव्य–गुण–पर्याय सबको जानता है। उपयोगात्मक ज्ञान। वह ज्ञान वहाँ शून्य नहीं हो गया है कि आनन्द को जाने नहीं। जो वेदन में आता है वह सब जानता ही है। आनन्दगुण जो अनुपम आत्मा का प्रगट होता है, आनन्दगुण और अनन्त शक्तिओंसे भरपूर आत्मा, अनन्त सामर्थ्यसे भरपूर आत्मा उसे जो वेदन में आता है वह सब उस क्षण जानता है, उसे जब वेदन में आता है तब। बाहर आने के बाद जानता है ऐसा अर्थ नहीं है। उसका ज्ञान स्वपरप्रकाशक ज्ञान है। अनुभूति में उसके ज्ञान का नाश नहीं हो जाता। अनुभूतिमें बाहर आये यानी, बाहर यानी विकल्प आश्रय मिले तो जाने, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। अनादिसे जो खुद को भूल गया है और परपदार्थ की ओर जो सब जानता है और राग–द्वेष एवं विकल्प के भाव वेदन में आते हैं उसे जानता है। और स्वानुभूति हो उसे नहीं जाने वह ज्ञान कैसा? स्वयं स्वानुभूति को जानता है। विभावभाव जो वेदन में आते हैं उसे जाने और स्वानुभूति को जाने नहीं?

ज्ञान तो परिपूर्ण सामर्थ्यसे भरा है। ज्ञानस्वभाव किसे कहे? जो सब जाने वह। स्वयं को जानता है, अपने वेदन को, आनन्द गुण को, सब गुणों को (जानता है)। स्वयं स्वयं को जाने, दूसरे गुणों को जाने, पर्याय की परिणति को जाने, सबको जाने। उपयोग बाहर नहीं है इसलिये बाह्य पदार्थों को नहीं जानता। अपनी स्वानुभूति में सब जानता है। उसही क्षण जानता है, बाद में जानता है ऐसा नहीं है। उसका वेदन हुआ और फिर उसे ख्याल आया कि मुझे यह वेदन हुआ, ऐसा नहीं है। उसही क्षण (जानता है)। जो जाना उसे बाहर आकर याद करता है। बाकी उसही क्षण उसे वेदन में आता है।

*

(तत्त्वचर्चाका शेष अंश आगेके अंकमें...)

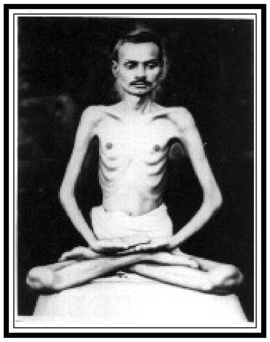

- परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी राजहृदय !!

पत्रांक - ३९४ (गतांकसे आगे...)

यदि जीवमें अल्प भी निष्काम भक्ति उत्पन्न हुई होती है तो वह अनेक दोषोंसे निवृत्त करनेके लिये योग्य होती है। अल्प ज्ञान अथवा ज्ञानप्रधानदशा असुगम मार्गके प्रति, स्वच्छंदादि दोषके प्रति, अथवा पदार्थसंबंधी भ्रांतिके प्रति जीवको ले जाती है, प्रायः ऐसा होता है; उसमें भी इस कालमें तो बहुत काल तक जीवनपर्यंत भी जीवको भक्तिप्रधानदशाकी आराधना करना योग्य है; ऐसा निश्चय ज्ञानियोंने किया प्रतीत होता है। (हमें ऐसा लगता है, और ऐसा ही है।)

हृदयमें जो मूर्त्तिसंबंधी दर्शन करनेकी आपकी इच्छा है, उसे प्रतिबंध करनेवाली प्रारब्ध स्थिति (आपकी) है, और उस स्थितिके परिपक्व होनेमें अभी देर है। और उस मूर्तिकी प्रत्यक्षतामें तो अभी गृहाश्रम है; और चित्रपटमें संन्यस्ताश्रम है, यह एक ध्यानका दूसरा मुख्य प्रतिबंध है। उस मूर्तिसे उस आत्मस्वरूप पुरुषकी दशा पुनः पुनः उसके वाक्यादिके अनुसंधानमें विचारणीय है, और उसका उस हृदयदर्शनसे भी बड़ा फल है। इस बातको यहाँ संक्षिप्त करना पड़ता है।

'भृंगी ईलिकाने चटकावे, ते भृंगी जग जोवे रे।'

यह पद्य परंपरागत है। ऐसा होना किसी प्रकारसे संभव है, तथापि उसे प्रोफेसरके गवेषणके अनुसार मानें कि वैसा नहीं होता, तो भी इसमें कोई हानि नहीं है, क्योंकि दृष्टांत वैसा प्रभाव उत्पन्न करने योग्य है, तो फिर सिद्धांतका ही अनुभव या विचार कर्तव्य है। प्रायः इस दृष्टांतसंबंधी किसीको ही विकल्प होगा। इसलिये यह दृष्टांत मान्य है, ऐसा लगता है। लोकदृष्टिसे अनुभवगम्य है, इसलिये सिद्धांतमें उसकी प्रबलता समझकर महापुरुष यह दृष्टांत देते आये हैं और हम किसी प्रकारसे वैसा होना संभव भी समझते हैं। एक समयके लिये भी कदाचित् यह दृष्टांत सिद्ध न हो ऐसा प्रमाणित हो, तो भी तीनों कालमें निराबाध, अखण्ड-सिद्ध ऐसी बात उसके सिद्धांतपदकी तो है।

'जिन स्वरूप थई जिन आराधे, ते सही जिनवर होवे रे।'

आनन्दघनजी और अन्य सभी ज्ञानी पुरुष ऐसे ही कहते हैं, और जिनेन्द्र कुछ अन्य ही प्रकार कहते हैं कि अनन्त बार जिनसंबंधी भक्ति करनेपर भी जीवका कल्याण नहीं हुआ; जिनमार्गमें अपनेको माननेवाले स्त्री पुरुष ऐसा कहते हैं कि हम जिनेंद्रकी आराधना करते हैं, और उसकी आराधना करने जाते हैं, अथवा आराधनाके उपाय अपनाते हैं, वैसा होनेपर भी वे जिनवर हुए दिखायी नहीं देते, इसलिये तीनों कालमें अखण्ड ऐसा यह सिद्धांत यहाँ खंडित हो जाता है, तब यह बात विकल्प करने योग्य क्यों नहीं?

निष्काम यथायोग्य।

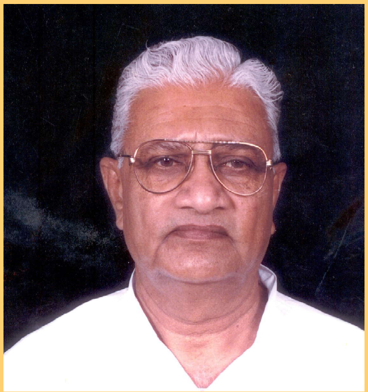

आत्महितसे अधिक किसकी कीमत ?!!

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

किसी भी प्रसंगमें तीव्र रसपूर्वक प्रवृत्ति न हो यह ज्ञानियोंके मार्गमें प्रवेश करनेका द्वार है। यदि तुझे ज्ञानीके मार्गमें प्रवेश करना हो, मोक्षमार्गमें प्रवेश करना हो, ज्ञानी कहो चाहे भगवान कहो उनके मार्गमें, परमात्माके या जिनेश्वरके मार्गमें प्रवेश करना हो तो सर्वप्रथम तू तेरा बाहरका रस उड़ा दे। चाहे जैसा भी प्रसंग हो इसकी कीमत क्या है? बाहरके प्रसंगकी कीमत क्या है? बात इतनी है। तेरे आत्माके बराबर इसकी कीमत है? तेरे आत्माके हित जितनी कीमत है? तेरे आत्माके गुण जितनी कीमत है? क्या तेरे आत्माकी शान्ति जितनी कीमत है? आनंद जितनी कीमत है? ज्ञान जितनी कीमत है? कितनी कीमत है?

यदि विषयको, बातको विचार करके हृदयमें ठीक की होगी तो उदयकालमें जब भी तीव्र रस उत्पन्न होगा, जागृति आ जायेगी कि, अरे ! यह तो मैं अपना नुकसान करता हूँ। जैसे कोई सातवीं मंजिलसे कूदनेकी नौबत आये तो एकबार रोंगटे खड़े हो जाये। हो जाये कि न हो जाये? अरे...! इतनी ऊँचाई है ! यहाँसे कैसे कूदना? वैसे जीवको भीतरमें अपना अहितरूप कार्य करते समय झिझकना हो जाये, हिचकिचाहट हो जाये तब तो यह पात्रताका लक्षण है, यह इसका सबूत है।

अतः हितके लिये जीव यदि उद्यमवंत हो और अच्छी तरह उद्यमवंत हो, अनन्तकालका विचार करके, भूतकालका विचार करके, अपने दुःखोंका विचार करके कि अबतक कितना मैं दुःखी हुआ और कितना दुःखी हो रहा हूँ तो सबसे बड़ी बात यह है कि, अपना स्वभाव उसको साथ देता है। उसका आत्मदेव जिसे यहाँ रमणीय चैतन्यदेव बतलाया वह चैतन्यदेव जीवको साथ देता है। जगतके दूसरे संयोगोंका साथ मिले या ना मिले, शरीर साथ दे या ना दे क्योंकि शरीर अपने अनुसार नहीं चलता। चलता है अपनी इच्छानुसार? वह टेढ़ापन करके टेढ़ा चलता है।

हमारे (एक मुमुक्षु थे) वे कई बार ऐसा कहते थे। वृद्धावस्था थी (तो कहते थे) यह पड़ौसी है न वह टेढ़ा चलता है। शरीर कौन है? पड़ौसी है। यह पड़ौसीका उपद्रव बहुत है। पड़ौसी उपद्रव करे तो करने दो। आत्मा यदि सीधा हो तो पड़ौसीका उपद्रव हमें बाधा नहीं कर सकता। भले ही करता रहे। वह अपने हिसाबसे चलेगा, आत्माकी इच्छानुसार विकल्पअनुसार शरीर चले यह वस्तुस्थिति तो नहीं है। इसलेये भीतरमें स्वभाव ऐसा है कि जीव यदि अपना हित करना चाहे तो भीतरमें सानुकूलता हो जाती है। हित होने योग्य परिणामकी सानुकूलता स्वभावमेंसे होने लगती है। जीव भीतरमेंसे छटपटाता है कि अब कैसे भी मुझे अपना हित कर लेना है।

✻

(प्रवचनांश...'बहिनश्रीके वचनामृत'-१८३, दि.२१-०८-८७, प्रवचन क्र.-१३८, 'अध्यात्म सुधा' भाग-५, पन्ना नं -२९९-३००)

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर एस्टेट, बारडोलपुरा, अहमदाबाद - ३८० ०१६ से मुद्रित एवं १९४२ - बी, शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी, भावनगर - ३६४ ००१ से प्रकाशित ।

संपादक : श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा - 98250 52913

Printed Edition : **3520**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...

Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur process 9374825041